समाज विकासमाला

स्वामी विवेकानंद

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

समाज-विकास-माला : ६१

स्वामी विवेकानंद

जीवन-परिचय और शिक्षाप्रद घटनाएं

लेखक
ओंकारनाथ श्रीवास्तव

संपादक
यशपाल जैन

१६५६

सस्ता साहित्य मंडल-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

पहली बार : १९५९
मूल्य
सैंतीस नये पैसे

मुद्रक
सत्यपाल धवन
दि सैंट्रल इलैक्ट्रिक प्रैस
दिल्ली

समाज-विकास-माला

हमारे देश के सामने आज सबसे बड़ी समस्या करोड़ों आदमियों की शिक्षा की है। इस दिशा में सरकार की ओर से यदि कुछ कोशिश हो रही है तो वही काफी नहीं है। यह बड़ा काम सबकी सहायता के बिना पार नहीं पड़ सकेगा।

बालकों तथा प्रौढ़ों की पढ़ाई की तरफ जबसे ध्यान गया है, ऐसी किताबों की मांग बढ़ गई है, जो बहुत ही आसान हों, जिनके विषय रोचक हों, जिनकी भाषा मुहावरेदार और बोलचाल की हो और जो मोटे टाइप में बढ़िया छपी हों।

यह पुस्तक-माला इन्हीं बातों को सामने रखकर निकाली गई है। इसमें कई पुस्तकें निकल चुकी हैं। इन सबकी भाषा बड़ी आसान है। विषयों का चुनाव बड़ी सावधानी से किया गया है। छपाई-सफाई के बारे में भी विशेष ध्यान रखा गया है। हर किताब में चित्र भी देने की कोशिश की है।

यदि पुस्तकों की भाषा, शैली, विषय, और छपाई में किसी सुधार की गुंजाइश मालूम हो तो उसकी सूचना निस्संकोच देने की कृपा करें।

—मंत्री

पाठकों से

स्वामी विवेकानंद को कौन नहीं जानता ! वह बंगाल में जन्मे, लेकिन अपने कामों से सारे भारत के हो गये। उनका नाम हमारे देश से बाहर भी गया और आज दुनिया के कई दूसरे देशों में भी उनके बहुत-से प्रशंसक और अनुयायी मिलते हैं।

धर्म और संस्कृति के लिए स्वामी विवेकानंद ने क्या किया और अमरीका आदि देशों में जाकर किस तरह वहां के लोगों पर असर डाला, इसकी कहानी आप इस पुस्तक में पढ़ेंगे। विवेकानंद के जीवन की कई घटनाएं तो बड़ी ही मार्मिक हैं।

हमें पूरा विश्वास है कि जो भी इस पुस्तक को पढ़ेंगे, उन्हें लाभ ही होगा। जीवन को ऊंचा बनाने की प्रेरणा और शिक्षा मिलेगी।

—संपादक



स्वामी विवेकानंद

स्वामी विवेकानंद

भारत में अनेक महापुरुष पैदा हुए हैं। कृष्ण, बुद्ध, गांधी आदि को कौन नहीं जानता? सच बात यह है कि जब-जब इस देश की भूमि पर अंधकार छाया है, किसी-न-किसी महापुरुष ने जन्म लेकर उस अंधकार को छिन्न-भिन्न कर दिया है। पिछली सदी में भारत का आंगन एक घने अंधकार से घिर गया था। राष्ट्रीय संग्राम कुचल दिया गया था। राष्ट्रीय गौरव नष्ट-भ्रष्ट हो गया था। लोग मन मारकर बैठ गये थे। कुछ ऐसे भी लोग थे, जो अंग्रेजी सभ्यता के प्रभाव में आकर अपने सारे इतिहास को भूल गये थे और पश्चिम की दिमागी गुलामी स्वीकार कर रहे थे। ऐसे समय में एक सूर्य का उदय हुआ। उसने अपनी तेज़ किरणों से पूरब और पच्छिम, सभीको जगमगा दिया। उसने लोगों की आंखें खोल दीं। वह थे स्वामी विवेकानंद। इस पुस्तक में हम उन्हींके जीवन पर प्रकाश डालेंगे।

: १ :

स्वामी विवेकानंद का बचपन का नाम नरेंद्रनाथ दत्त था। कलकत्ते के पास सियुलिया नामक स्थान पर मकर संक्रांति के दिन १२ जनवरी १८६३ को सबेरे विश्वनाथ दत्त के घर उनका जन्म हुआ था। वह अपने पिता के इकलौते बेटे थे। बड़े पूजा-पाठ और मानताओं के बाद माता-पिता ने बेटे का मुंह देखा था। बचपन में वह बहुत फुर्तीले और ऊधमी थे। एक बार उनसे किसीने पूछा, "बड़े होकर तुम क्या बनना चाहते हो?"

उन्होंने झट उत्तर दिया, "कोचवान।"

एक बार नरेंद्र ने एक सुंदर नया कपड़ा पहना। तभी एक साधु आया और उनसे वही कपड़ा मांग बैठा। नरेंद्र देने को तैयार हो गये, मां ने रोका। नरेंद्र ने हठ की। मां ने उन्हें कमरे में बंद कर दिया, मगर वह न माने। खिड़की से कपड़ा फेंककर साधु से कहा, "तुम इसे ले जाओ।" मां ने हार मानी और बेटे को आशीर्वाद दिया कि दीन-दुखियों के प्रति तेरा दिल ऐसा ही रहे।

पढ़ाई के दिनों में नरेंद्र पढ़ाई और तंदुरुस्ती दोनों पर बराबर ध्यान देते थे। अपने समय में वह

अपने साथियों के अगुवा बने रहे। उनकी बुद्धि इतनी तेज़ थी कि जब इंटर में पढ़ते थे तभी उन्होंने प्रसिद्ध अंग्रेजी विचारक हरबर्ट स्पेंसर को उनके दर्शन के बारे में आलोचना लिख भेजी। स्पेंसर ने उसे पढ़कर उनकी बुद्धि की सराहना की।

बचपन से ही नरेंद्र के मन में सवाल उठने लगे कि इस संसार को किसने बनाया है ? कौन शक्ति हमसे यह सारा काम कराती है ? ईश्वर ? वह कौन है ? कहां है ? कैसा है ? दिखाई क्यों नहीं देता ?

इन सवालों का जवाब पाने के लिए नरेंद्र ने ब्राह्म समाज की सभाओं में जाना शुरू किया, मगर वहां उनकी प्यास न बुझी, बल्कि और बढ़ती ही गई। तभी उन्हें किसीने बताया कि दक्षिणेश्वर में एक महात्मा रामकृष्ण परमहंस रहते हैं। वह शायद कुछ रास्ता दिखा सकें। कौन जाने नरेंद्र वहां जाते भी या नहीं। परंतु इसी बीच रामकृष्ण परमहंस का कलकत्ते में आगमन हुआ। नरेंद्र उनका दर्शन करने गये। उन का कंठ बहुत अच्छा था। उन्होंने रामकृष्ण के सामने एक गीत गाया :

"चलो मन निज निकेतन।"

गीत सुनकर रामकृष्ण ध्यान में लीन हो गये।

इसका प्रभाव नरेंद्र के मन पर अच्छा पड़ा, मगर उन्हें तो अपने सवालों का जवाब चाहिए था। रामकृष्ण परमहंस ने उन्हें अपने पास दक्षिणेश्वर आने का न्योता दिया, परंतु नरेंद्र की इंटर की परीक्षा होने वाली थी। इसलिए जाने की बात टल गई।

परीक्षा हो गई, मगर जो उथल-पुथल मन में पैदा हुई थी उसका अंत नहीं हुआ। एक बार उन्होंने रवींद्रनाथ ठाकुर के पिता महर्षि देवेंद्रनाथ ठाकुर से पूछा, "क्या आपने ईश्वर का दर्शन किया है?" महर्षि असमंजस में पड़कर थोड़ी देर तक नरेंद्र की ओर देखते रहे, फिर उन्हें कई प्रकार से उपदेश दिया। मगर उपदेश से शांति कहां मिलती थी। नरेंद्र निराश हो गये। उन्हें किसीसे भी यह सवाल पूछने में डर लगने लगा कि कहीं फिर उसी निराशा का सामना न करना पड़े।

मगर एक दिन हिम्मत बटोरकर वह दक्षिणेश्वर में रामकृष्ण के पास जा ही पहुंचे और उनसे वही सवाल कर बैठे।

रामकृष्ण ने हँसकर कहा, "हां बेटे, मैंने ईश्वर का दर्शन किया है। जैसे तुम्हें देख रहा हूं, इससे भी ज्यादा अच्छी तरह से मैंने ईश्वर को देखा है। तुम भी देखना चाहते हो? मैं तुम्हें भी दिखा सकता हूं, मगर तुम्हें

मेरे कहने के अनुसार चलना पड़ेगा।"

नरेंद्र और क्या चाहते थे ! बुद्धि से ईश्वर मिलना होता तो वह किसीसे कम न थे। पर उन्हें तो चाहिए था एक अखंड विश्वास और आश्वासन। एक बार बुद्धि ने ज़ोर मारा, "भला यह भी कहीं हो सकता है। ये कहते हैं—मैंने ईश्वर को देखा है। और तो किसीने यह दावा नहीं किया। हो सकता है यह कोरी शेखी हो !"

संशय और संदेह से भरी आंखें ऊपर उठीं तो देखते क्या हैं कि बालकों जैसी सरलतावाला रामकृष्ण का मुखमंडल हँसी से खिल रहा है। संदेह और अविश्वास को कहीं जगह ही नहीं है। उस भोली हँसी में एक दैवी बुलावा था, जिसे नरेंद्र अस्वीकार न कर सके। उन्होंने तय किया कि रामकृष्ण परमहंस के पास रहकर देखूंगा कि वह कहांतक सच कहते हैं और जो कहते हैं उसे कहांतक निभाते हैं।

दो-तीन दिन बाद वह फिर दक्षिणेश्वर पहुंचे। उन्हें देखते ही रामकृष्ण मगन हो गये और उनसे ऐसा बर्ताव करने लगे, मानों कोई पुरानी जान-पहचान-वाला हो। कुछ भजन सुनने के बाद उन्होंने नरेंद्र को अलग बुलाकर कहा, "अरे नरेंद्र, तू इतने दिनों तक

कहां था ? कबसे मैं तेरी राह देख रहा हूं। संसारी आदमियों से बातें करते-करते तो मैं थक गया। आने में इतनी देर करनी चाहिए थी ?"

कहते-कहते रामकृष्ण का गला रुंध गया, रोने लगे। फिर हाथ जोड़कर बोले, "मैं जानता हूं। तुम 'नर' ऋषि के अवतार हो और जीवों के कल्याण के लिए तुमने देह धारण किया है।"

नरेंद्र को इनसब बातों पर बड़ा आश्चर्य हुआ। वह रामकृष्ण के यहां अक्सर जाने लगे। उनके प्रभाव में वह आ चुके थे, मगर बुद्धि अब भी कभी-कभी विद्रोह करवाती थी। अनेक बार दक्षिणेश्वर जाकर नरेंद्र ने रामकृष्ण की परीक्षा लेनी चाही, लेकिन रामकृष्ण कभी भी विचलित नहीं हुए। उनका वह बाल-स्वभाव और निश्छल हँसी कभी भी उनसे अलग नहीं हुई। नरेंद्र पर दिनों-दिन उनकी छाप गहरी होती गई।

: २ :

एक बार हँसी-हँसी में रामकृष्ण ने भी नरेंद्र की परीक्षा ले डाली। अपनी सभाओं में वह प्रायः नरेंद्र की ओर बहुत ध्यान दिया करते थे। उनसे बड़ा अच्छा व्यवहार करते थे। अचानक उन्होंने नरेंद्र की ओर ध्यान देना बंद कर दिया। सभीको अचरज हुआ

कि इसका क्या कारण है ? एक दिन रामकृष्ण ने स्वयं ही पूछा, "क्यों नरेंद्र, जब मैं तुझसे बात भी नहीं करता तो तू यहां क्यों आता है ?" नरेंद्र ने फौरन जवाब दिया, "इससे क्या होता है ! आप औरों से तो बात करते हैं। मैं सुनता हूं, मुझे अच्छा लगता है, इसीलिए आता हूं।"

रामकृष्ण को नरेंद्र के स्वभाव का पता चल गया। इस घटना के बाद नरेंद्र रामकृष्ण के बहुत ही आत्मीय बन गये।

इसी बीच नरेंद्र के पिता का स्वर्गवास हो गया और वह परिवार का पालन करने के चक्कर में पड़ गये। यह काल नरेंद्र का सच्चा परीक्षा-काल था। हर ओर उनकी परीक्षा हो रही थी। मौका पाकर रिश्तेदारों ने जायदाद हड़प ली, मुकदमेबाजी शुरू हो गई। हालत इतनी खराब हुई कि कभी-कभी तो पेट भरना मुश्किल हो जाता। एक दिन घर में कुछ न था। नरेंद्र भूखे सो गये। भगवान का नाम लेकर जागे तो मां ने कहा, "किस काम का है तेरा भगवान, जो पेट भर खाना भी नहीं दे सकता ?"

नरेंद्र पीड़ा से छटपटा उठे। दौड़े हुए रामकृष्ण के पास गये। बोले, "आप अपनी माताजी से मेरे

लिए प्रार्थना कीजिये। मुझसे यह कष्ट नहीं देखा जाता।"

रामकृष्ण ने कहा, "यह कैसे हो सकता है। तू तो माता में विश्वास नहीं करता और मैं इस तरह मां से कुछ मांगता नहीं।"

नरेंद्र ने कहा, "अपने लिए नहीं, मेरे लिए मांगिये।"

रामकृष्ण ने कहा, "अपने लिए तू आप मांग। काली माता के मंदिर में जा। जो चाहिए, जगदंबा से मांग ले। मुंहमांगा मिलेगा।"

नरेंद्र ब्राह्मसमाज के अनुयायी रह चुके थे। मूर्ति के सामने जाकर उससे प्रार्थना करने की बात उनकी समझ में नहीं आती थी। पर जब रामकृष्ण ने बहुत आग्रह किया तो वह कालीमाता से अपने परिवार के दुखों को दूर करने की याचना करने गये। मंदिर में पहुंचकर उन्हें लगा, जैसे वे कोरी मूर्ति के सामने नहीं, साक्षात् जगदंबा के सामने खड़े हों। नरेंद्र से कोई दुनियवी चीज़ न मांगी गई। विवेक, ज्ञान, वैराग्य आदि मांग लिये।

रामकृष्ण ने पूछा तो नरेंद्र ने कहा, "जगदंबा से दुनिया की चीजें मांगना मुझे वैसा ही लगा जैसे

किसी राजा से आलू-बैंगन मांगना । मुझसे और कुछ मांगते ही नहीं बना ।"

रामकृष्ण हँसे और बोले, "मैं जानता था कि तू तुच्छ वस्तु मां से नहीं मांगेगा ।" थोड़ी देर रुककर फिर बोले, "अच्छा जा, माता की मर्जी होगी तो तेरे घर में खाने-पीने और कपड़े-लत्ते की कमी नहीं होगी ।"

ऐसा ही हुआ । कुछ दिनों बाद नरेंद्र मुकदमा जीत गये । एक-एक करके बहुत छोटे-मोटे काम भी उन्होंने किये, जिससे कुछ आमदनी होती रही और काम चलता रहा ।

नरेंद्र के मन में इच्छा होने लगी कि घर-बार छोड़कर अपने गुरु रामकृष्ण की सेवा में दिन बितावें, परंतु घर-गिरस्ती के झंझट पीछे लगे थे । इसी बीच रामकृष्ण के गले में कैंसर हो गया । अबतक उनके शिष्यों में नरेंद्र का स्थान सबसे ऊंचा बन चुका था । नरेंद्र ने अपने गुरु की सेवा-चिकित्सा आदि का प्रबंध किया । दक्षिणेश्वर के पास काशीपुर में एक बगीचे-वाला मकान किराए पर लिया । वहीं चकित्सा के साथ-साथ भजन-उपदेश होने लगे । यहींपर नरेंद्र तथा दूसरे शिष्यों ने संन्यास ग्रहण किया । अब नरेंद्र को लगने लगा कि घर छोड़कर सारा जीवत अर्पित कर

देने का समय आ गया है। एक दिन अंतःकरण की यह पुकार सारे बंधनों पर विजय पा गई। घर-बार छोड़कर नंगे पैरों भागते हुए वह अपने गुरु के पास जा पहुंचे।

काशीपुर में रहकर शास्त्र, इतिहास आदि का अध्ययन करने लगे, साथ ही गुरु की सेवा। रामकृष्ण की हालत दिनों-दिन गिरती जा रही थी। एक दिन सारी शिष्यमंडली सहित नरेंद्र ने उनसे कहा, "आप जगदंबा से कहिये कि आपकी व्याधि मिटा दें।" राम-कृष्ण ने उत्तर दिया, "ऐसी बात तो मैं उनसे नहीं कह सकता।" शिष्यमंडली ने अनुरोध करते हुए कहा कि सीधे न सही, इशारे से ही कहदें। वह राज़ी हो गये।

बाद में शिष्यों ने पूछा तो उन्होंने बताया, "मैंने माता से कहा कि मुझे खाने की तकलीफ़ होती है। माता ने तुम सबकी ओर इशारा करके कहा कि इतने मुंह से तो तू खाता है। इसके आगे मैं क्या कहता, मुझे शर्म आ गई।"

इस घटना के बाद सब जान गये कि उनका शरीर अब टिकेगा नहीं। वह स्वयं भी जान गये। अंत समय निकट जानकर उन्होंने नरेंद्र को एकांत में बुलाया और पास बैठाकर समाधि में लीन हो गये। थोड़ी

देर में नरेंद्र को लगा, मानों उनके अंदर बिजली जैसी कोई चीज़ प्रवेश करती जा रही है। शरीर थर-थर कांपने लगा, बेहोश हो गये। होश आने पर देखा—रामकृष्ण बैठे आंसू बहा रहे हैं। नरेंद्र को होश में आया देख वह बोले, "आज तुझे सब कुछ देकर मैं फकीर हो गया। अब जबतक मेरा काम पूरा नहीं होगा, तुझे छुट्टी नहीं मिलेगी।"

इसके बाद १६ अगस्त सन् १८८६ को रामकृष्ण परमहंस का देहांत हो गया।

: ३ :

अब नरेंद्र और गुरु-भाइयों के सामने एक ही काम था और वह यह कि रामकृष्ण परमहंस के काम को पूरा करने के लिए जी-जान से प्रयत्न करना। काशीपुर के पास बराह नगर में एक छोटा-सा मकान किराये पर लेकर पहला रामकृष्ण-आश्रम स्थापित किया और सब गुरु-भाइयों ने वैदिक विधि से संन्यास धारण किया। तभी नरेंद्र ने अपना नाम बदलकर विवेकानंद रख लिया और जैसा परमहंस आदेश दे गये थे, उनके उपदेशों का प्रचार करने लगे। कुछ दिनों बाद उन्हें लगा कि इस तरह एक ही स्थान पर रहकर उपदेश करना ठीक नहीं है। ज्ञान के बीजों

को देशभर में बिखेरना ठीक होगा। उन्होंने सबसे पहले मुख्य-मुख्य तीर्थों की यात्राएं करनी शुरू कीं। पहले वैद्यनाथ धाम गये, फिर दूसरी यात्रा में काशी, प्रयाग आदि तीर्थ किये।

काशी में घूमते समय वह एक लंबा अंगरखा पहने हुए थे। जेब में कुछ किताबें पड़ी थीं। बंदरों ने कुछ खाने की चीज़ समझकर पीछा किया। स्वामीजी भागे। तभी किसी दूसरे संन्यासी ने ललकारकर कहा, "यह क्या कर रहे हो? भागो मत, सामना करो।" स्वामीजी जमकर खड़े हो गये। बंदर भाग गये। इस घटना को याद करके स्वामीजी कहा करते थे, "पशुओं का सामना करो, अविद्या का सामना करो, माया का सामना करो, भागो मत।"

वृंदावन में एक और घटना घटी। स्वामीजी को तमाखू पीने की आदत थी। पैदल ही वृंदावन जा रहे थे। तीस मील का रास्ता था। काफ़ी थक गये थे। सोचा, तमाखू पीने को मिल जाता तो कुछ थका-वट कम हो जाती। देखा, एक झोंपड़ी में एक बुड्ढा हुक्का पी रहा है। उससे चिलम मांगी। उसने कहा, "महाराज, मैं तो अछूत हूं।" यह सुनते ही स्वामी-जी आगे बढ़ गये। कुछ ही दूर गये होंगे कि विचार

आया, जाति-कुल-मान का विचार करना संन्यासी के लिए धर्म-विरुद्ध है। छुआछूत का विचार केवल सफ़ाई के खयाल से करना चाहिए। वर्ण या पेशों में अछूतपन नहीं होना चाहिए। इस कुसंस्कार को तोड़ना ही पड़ेगा। यह सब सोचकर स्वामीजी पीछे लौट आये और बुड्ढे से चिलम मांग कर पी। स्वामीजी कहा करते थे--

"घृणा, द्वेष और ऊंच-नीच का भाव संन्यासी के लिए अनुचित है। पिछले संस्कार उठकर किसी भी समय संन्यासी को रास्ते से डिगा सकते हैं, इसलिए उसे हमेशा सावधान रहना चाहिए, अंदर टटोलकर छिपी हुई बुराइयों को पकड़ लेना चाहिए।"

यात्राओं में स्वामीजी को तरह-तरह के अनुभव होते रहे, जिन्होंने उनके विचारों को ठोस आचरण का रूप दिया। उन्हें अनेक ऐसे लोग भी मिले, जो उनसे बहुत प्रभावित हुए और बाद में उनके बताये रास्ते की ओर झुके।

स्वामीजी के अंग्रेज़ी के ज्ञान से उन्हें बहुत मदद मिली। एक तो, जब लोग साधु के भेस में अंग्रेज़ी जानने-वाले को देखते थे तो उसका उनपर बड़ा असर होता था। दूसरे, अंग्रेज़ी की सहायता से कभी-कभी स्वामी-

जी ऐसे लोगों को भी उपदेश दे सकते थे, जो उस भाषा को अधिक अच्छी तरह समझ सकते थे। बाद में जब वह विदेश गये तब तो उनका अंग्रेज़ी का ज्ञान उन्हें बहुत ही सहायक सिद्ध हुआ।

अलवर की बात है। स्वामीजी घूमते हुए वहां जा पहुंचे थे। उनकी ख्याति महाराजा के कानों तक भी पहुंची। उन्होंने स्वामीजी को दरबार में बुलाया। उनके आने पर पूछा, "स्वामीजी, पत्थर, लकड़ी, मिट्टी आदि की पूजा से क्या होता है ?"

उत्तर में स्वामीजी ने सामने टंगी हुई राजासाहब की तस्वीर उतरवाकर मंगाई और दीवान से उसपर थूकने को कहा।

दीवान भौंचक्के रह गये। बोले, "भला यह कैसे हो सकता है ? यह तो हमारे महाराजासाहब की तस्वीर है।"

स्वामीजी ने कहा, "महाराजा इसमें बैठे हैं ? यह तो कागज़ का एक टुकड़ा है।"

दरबार में कोई भी आदमी उसपर थूकने को तैयार न हुआ। तब स्वामीजी ने कहा, "इसका कारण यह है कि इस कागज़ के टुकड़े में महाराजा नहीं हैं, उनकी छवि मौजूद है। इसपर थूकना स्वयं महाराजा

का अपमान करना है। इसे देखते ही महाराजा याद आते हैं, इसलिए जो आदर महाराजा को मिलता है, वही इस तस्वीर को मिलना उचित है। इसी तरह कोई भी पत्थर, मिट्टी या लकड़ी नहीं पूजता। सब उसमें परमेश्वर की छवि ही को पूजते हैं।"

महाराजा के मन का संशय मिट गया और वह स्वामीजी के भक्त हो गये।

अलवर में ही एक और छोटी-सी घटना हुई। वहां स्वामीजी के पास रोज़ एक आदमी आया करता था। वह बातें बहुत करता था, मगर उनके बताये रास्ते पर कभी नहीं चलता था। एक दिन उसने बहुत देर तक स्वामीजी की जान खाई, मगर स्वामीजी चुप रहे। हारकर वह बड़बड़ाता चला गया। उसके जाने पर स्वामीजी ने हँसते हुए कहा, "यह आदमी चाहता सबकुछ है, मगर करना कुछ नहीं चाहता। यह समझता ही नहीं कि सत्य के लाभ के लिए पुरुषार्थ ज़रूरी है। जो कुछ नहीं करता, उसे कुछ नहीं मिलता। मैं इसीलिए कहता हूं कि मर्द बनो, बलवान बनो। एक बदमाश अगर शक्तिमान--सच्चा मर्द हो तो मैं उसका आदर करता हूं, क्योंकि वह शक्ति एक दिन उसे बुरे रास्ते से हटाकर अच्छे रास्ते पर ले

आयगी ।"

राजपूताने में खूब घूम-घामकर स्वामीजी गुजरात, कांठियावाड़, मध्यभारत और महाराष्ट्र होते हुए दक्षिण जा पहुंचे । तभी ख़बर आई कि अमरीका में 'सर्व-धर्म-सभा' होने जा रही है । मद्रास के उनके शिष्यों ने किसी तरह अनुरोध करके उन्हें अमरीका जाने के लिए राज़ी कर लिया । अबतक स्वामीजी का यह विचार पक्का हो गया था कि भारत का पतन धर्म से चिपटे होने के कारण नहीं, बल्कि धर्म से भ्रष्ट होकर अपनी एक निजी सत्ता, अपना व्यक्तित्व गंवा बैठने के कारण हुआ है । वह दुनिया में इस धारणा का प्रचार करना चाहते थे । वह चाहते थे कि परदेश के लोगों की भी आंखें खुलें और वे भारत के संबंध में जो झूठी राय बनाये बैठे हैं, वे दूर हों । इसीलिए वह अमरीका जाने को तैयार होगये ।

: ४ :

३१ मई सन् १८९३ को स्वामीजी ने अमरीका के लिए प्रस्थान किया । अमरीका में आकर स्वामीजी बड़ी मुसीबतों में फंस गये । पैसे के मामले में वह सावधान नहीं थे । लोगों ने ठग लिया । शिकागो पहुंचने पर मालूम हुआ कि सर्व-धर्म-सभा में शामिल

होने के लिए किसी संस्था का प्रतिनिधि होना ज़रूरी है। बड़ी निराशा हुई। उधर पैसा खत्म हो गया। मगर मन ने हार नहीं मानी। उनका यह विश्वास अटल रहा कि आज तक दुनिया का कोई भी बड़ा काम बिना विघ्न के पूरा नहीं हुआ। सर्व-धर्म-सभा शुरू होने में देर थी। शिकागो नगर बहुत महंगा पड़ता था, सो उन्होंने बोस्टन जाने का निश्चय किया। रास्ते में उनका परिचय एक वृद्धा से हुआ। उसकी धर्म की ओर रुचि थी। वह बड़ी खुशी से स्वामीजी को अपने गांव ले गई। वहां लोग स्वामीजी से हिंदू-धर्म के बारे में पूछने के लिए आने लगे। यहीं उनकी भेंट हार्वर्ड विश्व-विद्यालय के दर्शन के प्रोफ़ेसर राइट से हुई। राइट स्वामीजी से बातें करके बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने उनसे कहा कि आप शिकागो की सर्व-धर्म-सभा में क्यों नहीं शामिल होते। स्वामीजी ने कहा कि मैं आया तो इसीलिए तो था, परंतु यहां पता चला है कि बिना किसी संस्था के प्रमाण-पत्र के मुझे प्रतिनिधि नहीं बनाया जा सकता। राइट महोदय ने कहा कि आप जैसे महान विद्वान के लिए प्रमाण-पत्र की कोई ज़रूरत नहीं, मैं आपको सर्व-धर्म-सभा के अध्यक्ष के नाम पत्र दिये देता हूं।

पत्र लेकर स्वामीजी शिकागो रवाना हुए। लेकिन संयोग देखिये, सफ़र में पैसों का बटुआ और वह पत्र दोनों चीजें गुम हो गईं। अब तो बड़ी मुसीबत का सामना था। न किसीसे जान-पहचान, न सफ़र करने या खाने-पीने के लिए पैसे। एक रात उन्होंने एक लकड़ी के डिब्बे में सोकर बिताई। दूसरे दिन अकस्मात एक भद्र महिला ने स्वयं ही स्वामीजी से परिचय किया, अपने घर मेहमान बनाकर ले गईं और उनके लिए ज़रूरी चीजों का प्रबंध कर दिया।

११ सितंबर सन् १८९३ को सर्व-धर्म-सभा का उद्घाटन हुआ। सब धर्मों के प्रतिनिधियों की इस सभा को देखने के लिए हज़ारों अमरीका-निवासी इकट्ठे हो गये थे। अपने ढंग की यह एक निराली सभा थी। एक-एक धर्म के प्रतिनिधि ने भाषण करना शुरू किया। स्वामीजी के लिए यह अनुभव एकदम नया था। उनका दिल तेज़ी से धड़कने लगा। गला सूख गया। भाषण पहले से तैयार भी नहीं किया था, इसलिए और भी परेशानी थी कि क्या कहें। तभी उनके बोलने की बारी आ गई। स्वामीजी खड़े हो गये। संबोधन में शब्द निकले—"अमरीकावासी प्यारे भाइयो और बहनो!"

उनका इतना कहना था कि सभा-भवन तालियों

की गड़गड़ाहट से गूंज उठा। फिर क्या था, स्वामीजी बोले और ऐसा बोले कि उनके भाषण की बड़ी प्रशंसा हुई और वह सारे अमरीका में प्रसिद्ध हो गये। चारों ओर से स्वामीजी की मांग आने लगी। लोग हिंदू-धर्म का तत्त्व जानने के लिए लालायित हो गये। अक्सर व्याख्यानों में स्वामीजी को लोगों की आलोचनाओं और प्रश्नों का उत्तर देना पड़ता था। एक सभा में बोलते हुए बीच में रुककर उन्होंने पूछा, "इस सभा में जो हिंदू-धर्म और शास्त्रों के जानकार हों वे हाथ उठावें।" हज़ारों की भीड़ में से सिर्फ तीन-चार लोगों ने हाथ ऊंचे किये। तब स्वामीजी ने गंभीर गर्जना की, "इसपर भी तुम हमारे बारे में फ़तवा देने की जुर्रत करते हो ?"

स्वामीजी ने अमरीकावासियों को बताया कि भारतवर्ष की पहली आवश्यकता धर्म नहीं है। वहां अब भी, इस गिरी हालत में भी, काफ़ी धर्म मौजूद है। भारत की सच्ची बीमारी है भूख। अगर आप भारत के हितैषी हैं तो उसके लिए धर्म-प्रचारक (मिशनरी) नहीं, अन्न भेजिये।

शिकागो में स्वामीजी ने भारत के नाम का सिक्का जमाया तो भारत में भी उनके नाम की धूम मच

गई। देशभर में स्वामीजी के संबंध में सभाएं हुईं और लोग बड़ी उत्सुकता से उनकी स्वदेश वापसी की राह देखने लगे। परंतु उनके लिए अभी तो विदेश में ही बहुत काम बाकी था। अमरीका में उनके कई शिष्य हो गये थे। दो साल अमरीका में रहकर उन्होंने वहां के सभी बड़े शहरों में भाषण दिये। अमरीका के बाद स्वामीजी ने इंगलैंड की यात्रा की। इंगलैंड में भी उनका बहुत अच्छा स्वागत हुआ। बड़ी प्रशंसा हुई और अनेक लोग उनके शिष्य बन गये।

इंगलैंड से स्वामीजी फिर अमरीका गये, वहां से फिर इंगलैंड होकर यूरोप का भ्रमण करते हुए भारत लौटे। १५ जनवरी, १८९७ को उनका जहाज़ लंका पहुंचा। वहां उनका व्याख्यान हुआ। ११ दिन बाद स्वामीजी अपने अंग्रेज़ शिष्यों के साथ भारत आये। उस भूमि पर, जहां उन्होंने पहला क़दम रखा, वहां रामनद के राजा भास्कर सेतुपति ने स्मृति-स्तंभ बनवाया, जिसपर लिखा गया "सत्यमेव जयते।"––सत्य की ही जीत होती है। तोपों की सलामी देकर स्वामीजी का स्वागत किया गया। जगह-जगह वेदांत का उपदेश देते हुए स्वामीजी अपनी जन्मभूमि बंगाल लौटे। रामकृष्ण परमहंस की जयंती आ रही थी। स्वामीजी

शीघ्र ही रामकृष्ण-मिशन का संगठन और मठ की स्थापना कर देना चाहते थे। उनकी इच्छा थी कि इन संस्थाओं द्वारा नौजवानों को शिक्षा और प्रेरणा मिले और वे दीन-दुखियों की सेवा में अपना जीवन अर्पण कर सकें। स्वामीजी ने कहा—

"जिस शांति को तुम पाना चाहते हो, वह आंखें बंद करने से न मिलेगी। अगर तुम सच्ची शांति पाना चाहते हो तो आंखें खोलकर देखो कि तुम्हारे आस-पास कौन है, कौन ग़रीबी और बेबसी की हालत में पड़ा है, किस रोगी-अपाहिज को सहायता की ज़रूरत है और अपनी शक्तिभर उसकी सहायता करो। यही परमात्मा की सच्ची सेवा है, इसीसे तुम्हें शांति मिलेगी।"

इसी आदर्श को सामने रखकर स्वामीजी ने राम-कृष्ण मिशन की बेलूर में स्थापना की। अब तो यह मिशन काफ़ी बड़ा हो गया है और भारत में ही नहीं विदेशों में भी इसकी शाखाएं हो गई हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस संस्था के द्वारा सेवा का महान् कार्य हुआ है और हो रहा है।

: ५ :

अधिक मेहनत करने के कारण स्वामीजी की

तंदुरुस्ती गिरने लगी। परंतु फिर भी वह अपने कामों को बढ़ाते ही जा रहे थे। उत्तर, दक्षिण, पूरब, पश्चिम, सभी ओर उनकी ज़रूरत थी और सभी जगह वह पहुंचने का प्रयत्न करते थे। देश के अनेक भागों में स्वामीजी ने पाठशालाएं और मठ स्थापित किये।

इसी बीच स्वामीजी ने एक बार फिर विदेश-यात्रा की। २० जून १८९९ को इंग्लैंड के लिए रवाना हुए। अमरीका भी गये। पेरिस में एक धार्मिक सम्मेलन होनेवाला था, लौटकर उसमें भाग लिया। फिर यूरोप के दूसरे देशों में घूमकर तुर्की, यूनान और मिस्र होते हुए भारत लौट आये।

इस बार उनका शरीर एकदम जवाब दे गया, फिर भी आराम करना तो जैसे आता ही नहीं था। अन्य कामों के साथ-साथ उनका स्वाध्याय चलता था और शिष्यों को शास्त्र और व्याकरण पढ़ाना भी। उम्र उनकी अधिक नहीं थी, मगर जितना काम इतने समय में उन्होंने किया था, उतना सौ वर्ष में भी नहीं हो सकता था। स्वामीजी का काम पूरा हो चुका था। उन्होंने रामकृष्ण परमहंस के संदेश को दुनिया के कोने-कोने में पहुंचाकर और मठ आदि की स्थापना करके उस संदेश के पनपने का पूरा प्रबंध कर दिया था।

सन् १९०२ की ४ जुलाई का दिन। माता के मंदिर में बैठकर स्वामीजी कोई तीन घंटे तक वही गीत गाते रहे, जो उन्होंने रामकृष्ण के प्रथम दर्शन के समय गाया था।

"चलो मन निज निकेतन।"

शाम को नित्य की भांति शिष्यों से वेदों की चर्चा की और रात में समाधि लगाकर बैठ गये। उसी हालत में रात को कोई ९ बजे उनके प्राण पखेरू उड़ गये। अपार भीड़ इकट्ठी हो गई।

आज स्वामीजी हमारे बीच नहीं हैं, परंतु उनकी अमर आत्मा और उनका पावन संदेश आज भी मौजूद है। स्वामीजी ने सोते भारत को जगाया। उनके ये शब्द कभी भुलाये नहीं जा सकेंगे, "लंबी रात अब बीत गई जान पड़ती है। घोर दुःखों का अंत होता दीख रहा है। मौत की बेखबरी में सोया हुआ मुर्दा मानो जाग रहा है। जो अंधे हैं, वे देख नहीं सकते और जो पागल हैं वे समझ नहीं सकते कि हमारी मातृभूमि अपनी गहरी नींद से अब जाग रही है। अब कोई इसकी उन्नति को रोक नहीं सकता। यह अब और नहीं सोयगी। कोई बाहरी शक्ति अब इसे दबा नहीं सकती।

"यह देखो, भारतमाता धीरे-धीरे आंखें खोल रही

है। वह कुछ ही देर सोई थी। उठो, उसे जगाओ और पहले से अधिक बड़प्पन और आदर देकर पूरी भक्ति के साथ उसे उसके उस सिंहासन पर बिठा दो, जिसपर वह सदा ही विराजती रही है।"

'मंडल' द्वारा प्रकाशित कुछ पुस्तकें

गांधीजी-लिखित

प्रार्थना-प्रवचन (भाग १)	३·००
,, ,, (भाग २)	२·५०
गीता-माता	४·००
पंद्रह अगस्त के बाद	१·५०, २·००
धर्मनीति	१·५०, २·००
द० अफ्रीका का सत्याग्रह	३·५०
आत्मकथा	२·५०, ४·००
आत्म-संयम	३·००
गीता-बोध	०·५०
ग्राम-सेवा	०·३७
मंगल-प्रभात	०·३७
सर्वोदय	०·३७
नीति-धर्म	०·३७
आश्रमवासियों से	०·३७
हमारी मांग	१·००
सत्यवीर की कथा	०·२५
संक्षिप्त आत्मकथा	१·५०
हिंद-स्वराज	०·७५
अनीति की राह पर	१·००
बापू की सीख	०·५०
गांधी-शिक्षा (३ भाग)	०·६३
आज का विचार (२ भाग)	०·७४
ब्रह्मचर्य (२ भाग)	१·७५
गांधीजी ने कहा था (६ भाग)	२·२५

विनोबाजी की लिखी

विनोबा-विचार : २ भाग	३·००
गीता-प्रवचन	१·५०
शांति-यात्रा	१·५०
जीवन और शिक्षण	२·००
स्थितप्रज्ञ-दर्शन	१·००
ईशावास्यवृत्ति	०·७५
ईशावास्योपनिषद्	०·१२
उपनिषदों का अध्ययन	१·००
सर्वोदय-विचार	१·१२
स्वराज्य-शास्त्र	०·५०
भू-दान-यज्ञ	०·२५
गांधीजी को श्रद्धांजलि	०·३७
राजघाट की संनिधि में	०·६२
विचार-पोथी	१·००
सर्वोदय का घोषणा-पत्र	०·२५
जमाने की मांग	०·१२

नेहरूजी की लिखी

मेरी कहानी	८·००
हिंदुस्तान की समस्याएं	२·५०
राष्ट्रपिता	२·००
राजनीति से दूर	२·००
हिंदुस्तान की कहानी (संक्षिप्त)	२·५०

अन्य लेखकों की

आत्मकथा (राजेंद्रबाबू)	८·००
गांधीजी की देन ,,	१·५०
गांधी-मार्ग ,,	०·१२
महाभारत-कथा (राजाजी)	५·००
कुब्जा सुंदरी ,,	२·००
शिशु-पालन ,,	०·५०
मैं भूल नहीं सकता	२·५०
कारावास कहानी (सु० नै०)	१०·००
गांधी की कहानी (लु० फि०)	४·००
गांधी-श्रद्धांजलि-ग्रंथ	३·००
इंगलैंड में गांधीजी	२·००
बा, बापू और भाई	०·५०
गांधी-विचार-दोहन	१·५०

अहिंसा की शक्ति (ग्रेग)	१·५०
सत्याग्रह-मीमांसा	३·५०
बुद्धवाणी (वियोगी हरि)	१·००
संत-सुधासार (,,)	११·००
संतवाणी (वियोगी हरि)	२·००
प्रार्थना ,,	०·५०
अयोध्याकाण्ड ,,	१·००
भागवत-धर्म (ह. उ.)	६·५०
श्रेयार्थी जमनालालजी ,,	६·५०
स्वतंत्रता की ओर ,,	४·००
बापू के आश्रम में ,,	१·००
मानवता के झरने (माव)	१·५०
बापू (घ. बिड़ला)	२·००
रूप और स्वरूप ,,	०·६२
डायरी के पन्ने	१·००
ध्रुवोपाख्यान ,,	०·२५
स्त्री और पुरुष (टॉल्स्टॉय)	१·००
मेरी मुक्ति की कहानी,,	१·५०
प्रेम में भगवान ,,	२·००
जीवन-साधना ,,	१·२५
कलवार की करतूत ,,	०·३५
हमारे जमाने की गुलामी ,,	०·७५
बुराई कैसे मिटे ? ,,	१·००
बालकों का विवेक ,,	०·५०
हम करें क्या ? ,,	३·५०
धर्म और सदाचार ,,	१·२५
अंधेरे में उजाला ,,	१·५०
कल्पवृक्ष (वा० अग्रवाल)	२·००
हिमालय की गोद में	२·००
साहित्य और जीवन	२·००
कब्ज (म० प्र० पोद्दार)	१·००
राजनीति-प्रवेशिका(लॉस्की)	१·००
जीवन-संदेश (ख० जिब्रान)	१·२५
अशोक के फूल	३·००
जीवन-प्रभात	५·००
तुकाराम-गाथासार	१·५०
कां० का इतिहास २ भाग	२·००
पंचदशी (सं० य० जैन)	१·५०
सप्तदशी	२·००
रीढ़ की हड्डी	१·००
अमिट रेखाएं	३·००
एक आदर्श महिला	१·००
राष्ट्रीय गीत	०·२५
तामिल-वेद (तिरुवल्लुवर)	१·५०
थेरी-गाथाएं	१·५०
बुद्ध और बौद्ध साधक	१·५०
हमारे गांव की कहानी	१·५०
साग-भाजी की खेती	३·००
फलों की खेती	२·५०
पशुओं का इलाज (प० प्र०)	०·५०
रामतीर्थ-संदेश (३ भाग)	१·१२
रोटी का सवाल (क्रोपा०)	३·००
नवयुवकों से दो बातें ,,	०·३७
पुरुषार्थ (डॉ० भगवानदास)	६·००
काश्मीर पर हमला	२·००
शिष्टाचार	०·५०
भारतीय संस्कृति	३·५०
आधुनिक भारत	५·००
मैं तंदुरुस्त हूं या बीमार ?	०·५०
भा०नवजागरण का इतिहास	३·००
गांधीजी की छत्रछाया में	२·५०
भागवत-कथा	३·५०
जय अमरनाथ	१·५०
प्रगति के पथ पर (७ भाग)	१·७५
संस्कृत-साहित्य सौरभ (३४ पुस्तकें) प्रति पुस्तक	०·३७
समाज-विकास-माला (१०९ पुस्तकें) प्रति पुस्तक	०·३७

समाज-विकास-माला की पुस्तकें

१. बदरीनाथ
२. जंगल की सैर
३. भीष्म पितामह
४. शिवि और दधीचि
५. विनोबा और भूदान
६. कबीर के बोल
७. गांधीजी का विद्यार्थी-जीवन
८. गंगाजी
९. गौतम बुद्ध
१०. गांव सुखी, हम सुखी
११. निषाद और शबरी
१२. कितनी जमीन ?
१३. ऐसे थे सरदार
१४. चैतन्य महाप्रभु
१५. कहावतों की कहानियां
१६. सरल व्यायाम
१७. द्वारका
१८. बापू की बातें
१९. बाहुबली और नेमिनाथ
२०. तंदुरुस्ती हजार नियामत
२१. बीमारी कैसे दूर करें ?
२२. माटी की मूरत जागी
२३. गिरिधर की कुंडलियां
२४. रहीम के दोहे
२५. गीता-प्रवेशिका
२६. तुलसी-मानस-मोती
२७. दादू की वाणी
२८. नजीर की नज्में
२९. संत तुकाराम
३०. हजरत उमर
३१. बाजीप्रभु देशपांडे
३२. तिरुवल्लुवर
३३. कस्तूरबा गांधी
३४. शहद की खेती
३५. कावेरी
३६. तीर्थराज प्रयाग
३७. तेल की कहानी
३८. हम सुखी कैसे रहें ?
३९. गो-सेवा क्यों ?
४०. कैलास-मानसरोवर
४१. अच्छा किया या बुरा ?
४२. नरसी महेता
४३. पंढरपुर
४४. ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती
४५. संत ज्ञानेश्वर
४६. धरती की कहानी
४७. राजा भोज
४८. ईश्वर का मंदिर
४९. गांधीजी का संसार-प्रवेश
५०. ये थे नेताजी
५१. रामेश्वरम्
५२. कब्रों का विलाप
५३. रामकृष्ण परमहंस
५४. समर्थ रामदास
५५. मीरा के पद
५६. मिल-जुलकर काम करो
५७. कालापानी
५८. पावभर आटा
५९. सवेरे की रोशनी
६०. भगवान के प्यारे
६१. हारूं-अल-रशीद
६२. तीर्थंकर महावीर
६३. हमारे पड़ौसी
६४. आकाश की बातें
६५. सच्चा तीरथ
६६. हाजिर-जवाबी
६७. सिंहासन-बत्तीसी : भाग १
६८. सिंहासन-बत्तीसी : भाग २
६९. नेहरूजी का विद्यार्थी-जीवन
७०. मूरखराज
७१. नाना फड़नवीस
७२. गुरु नानक
७३. हमारा संविधान
७४. राजेंद्रबाबू का बचपन
७५. परमहंस की कहानियां
७६. सोने का कंगन
७७. झांसी की रानी
७८. हुआ सवेरा
७९. बीरबल की बातें
८०. मन के जीते जीत
८१. मुरब्बी
८२. हरिद्वार
८३. सागर की सैर
८४. आनबान के रखवारे
८५. महामना मालवीय
८६. भर्तृहरि
८७. देवताओं का प्यारा
८८. देश यों आगे बढ़ेगा
८९. हमारे मुस्लिम संत
९०. नन्हा अबाबील
९१. स्वामी विवेकानंद
९२. आप भला, जग भला
९३. नासिक
९४. सूर के पद
९५. संत वेमन्ना
९६. आराम हराम है
९७. गोरा-बादल
९८. पाटलिपुत्र
९९. महर्षि अगस्त्य
१००. दानवीर कर्ण
१०१. शेख सादी
१०२. गोदावरी
१०३. कुम्हार की बेटी
१०४. नर्मदा
१०५. शंकराचार्य
१०६. अमरनाथ
१०७. महारानी अहिल्याबाई
१०८. पढ़ेंगे-लिखेंगे...
१०९. कोणार्क
११०. मंगू भैया

मूल्य : प्रत्येक का ३७ न० पै०

सस्ता साहित्य मण्डल

मूल्य
सैंतीस नये पैसे